18 अध्याय

कृषक और जनजातीय आन्दोलन

इस अध्याय में आप सीखेंगे कि:

- भारत में कृषक आन्दोलन की शुरूआत क्यों हुई और यह अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में कहाँ तक सफल रहा।
- आदिवासी जनजाति आन्दोलन ने किस प्रकार अपनी मांगें रखीं और उनके आन्दोलन के क्या तरीके थे।
- क्षेत्रीय जनजाति आन्दोलन किस प्रकार ब्रिटिश शासन के दौरान अपनी शर्तें मनवाने में सक्षम रहा।

किसान आन्दोलन (Peasant Movement)

ब्रिटिश शासन के दौरान राजस्व व्यवस्था में मध्यस्थों की एक नई श्रेणी सामंतों-ज़मींदारों का विकास हुआ। बढ़ते हुए लगान के कारण किसान ऋण लेने को बाध्य हुए, जिससे साहूकारों के एक वर्ग का उदय हुआ। किसानों के द्वारा इन वर्गों के विरुद्ध विभिन्न विद्रोह किए गए, जिनका मुख्य उद्देश्य सामन्तशाही बन्धनों को तोड़ना अथवा कमज़ोर करना था। उन्होंने भूमि लगान बढ़ाने, बेदखली और साहूकारों की ब्याजखोरी के विरुद्ध विरोध प्रकट किया। वर्ग जागृति के अभाव में अथवा कृषकों का सुव्यवस्थित संगठन न होने के कारण, 19वीं शताब्दी के कृषक विद्रोह ने राजनैतिक रूप धारण नहीं कर सका।

रामोसी आन्दोलन (1822–1841 ई.)

रामोसी आन्दोलन अकाल तथा भूख की समस्या के चलते महाराष्ट्र में प्रारम्भ हुआ था। चित्तर सिंह एवं नरसिंह पेतकर इसके प्रमुख नेता थे। रामोसियों ने सतारा के आस-पास के क्षेत्रों को लूटा तथा किलों पर भी धावा कर दिया। 1825-26 ई. में भयंकर अकाल और अन्न की कमी के कारण इन्होंने उमाजी के नेतृत्व में एक बार फिर विद्रोह किया। यह विद्रोह लगातार 1841 ई. तक चलता रहा। इस काल में नरसिंह पेतकर के नेतृत्व में विस्तृत दंगे हुए।

मोपला विद्रोह (1836–1885 ई.)

मोपला लोग केरल के मालाबार क्षेत्र में रहने वाले अरब एवं मलयाली मुसलमान थे। ये अधिकतर छोटे किसान या व्यापारी थे। अंग्रेज़ों ने भू-स्वामियों के अधिकार का विस्तार करके उच्च जातीय हिन्दू नम्बूदारी एवं नायर भू-स्वामियों की शक्ति बढ़ा दी थी। प्रतिक्रिया स्वरूप मोपलाओं ने विद्रोह किया। इस विद्रोह ने साम्प्रदायिक रूप धारण कर लिया, क्योंकि अधिकांश भू-स्वामी हिन्दू थे तथा काश्तकार मुसलमान थे। नम्बूदारी और नायर जैसे उच्च जाति के भू-स्वामियों को शासन, पुलिस और न्यायालय से संरक्षण प्राप्त था। मुसलमानों के धार्मिक गुरु तथा स्थानीय नेता अली मुदलियार को गिरफ्तार कराने के प्रयास में मस्जिदों पर छापे मारे गए, परिणामस्वरूप पुलिस को विद्रोहियों के आक्रामक तेवरों का सामना करना पड़ा, कई विद्रोही मारे गए। वर्ष 1921 में अली मुसलियार के नेतृत्व में पुन: इस आन्दोलन की शुरूआत हुई, जोकि द्वितीय मोपला विद्रोह के नाम से जाना जाता है। कृषकों में असन्तोष इस आन्दोलन का मूल कारण था, परन्तु कालान्तर में इसने साम्प्रदायिक रूप ले लिया। महात्मा गाँधी, अबुल कलाम आज़ाद और खिलाफत आन्दोलन के नेता शौकत अली ने मोपला विद्रोहियों का समर्थन किया, लेकिन मोपला विद्रोह की उग्रता को देखते हुए सरकार ने सैनिक शासन की घोषणा कर दी, परिणामस्वरूप मोपला विद्रोह को कुचल दिया गया।

नील विद्रोह (1859–1860 ई.)

बंगाल के वे किसान जो अपने खेतों में चावल की खेती करना चाहते थे, उन्हें यूरोपीय नील बागान मालिक नील की खेती करने के लिए बाध्य करते थे। ददानी प्रथा के तहत किसानों को मामूली अग्रिम रकम देकर करारनामा कर लिया जाता था जो बाजार भाव से काफी कम होता था। अदालतें भी यूरोपीय नील उत्पादकों का ही पक्ष लेती थीं। नील विद्रोह की पहली घटना बंगाल के

नादिया में स्थित गोविन्दपुर गाँव में सितम्बर, 1859 ई. में हुई। स्थानीय नेताओं दिगम्बर विश्वास और विष्णु विश्वास के नेतृत्व में किसानों ने नील की खेती करने से मना कर दिया। 1860 ई. तक नील आन्दोलन नदिया, पावना, खुलना, ढाका, मालदा, दीनाजपुर आदि क्षेत्रों में फैल गया। किसानों की एकजुटता के कारण बंगाल में 1860 ई. तक नील के सभी कारखाने बन्द हो गए। नील विद्रोह को बंगाल के बुद्धिजीवियों, प्रचार माध्यमों, धर्म प्रचारकों तथा कहीं-कहीं छोटे ज़मींदारों और महाजनों का भी समर्थन प्राप्त हुआ। बंगाल के बुद्धिजीवी वर्ग ने समाचार-पत्रों में लेखों द्वारा तथा जनसभाओं के माध्यम से विद्रोह के प्रति अपने समर्थन को व्यक्त किया। नील बागान मालिकों के अत्याचार का खुला चित्रण दीनबन्धु मित्र ने अपने नाटक नील दर्पण में किया। 1860 ई. में नील आयोग के सुझाव पर एक सरकारी अधिसूचना जारी की गई। इसका आन्दोलन पर गहरा प्रभाव पड़ा और इसे आन्दोलनकारियों की बड़ी सफलता माना गया। नील विद्रोह भारतीय किसानों का पहला सफल विद्रोह था। कालान्तर में भारत के स्वाधीनता संघर्ष में यह सफलता एक प्रेरणा बन गई।

पाबना किसान विद्रोह (1873–1885 ई.)

इस विद्रोह का प्रमुख कारण ज़मींदारों द्वारा लगान में की गई अत्यधिक वृद्धि थी। ज़मींदारों के अत्याचार के विरुद्ध 1873 ई. में पाबना जिले के यूसुफशाही परगने में एक किसान संघ की स्थापना हुई। किसान संघ ने किसानों को संगठित करने, लगान न देने, ज़मींदारों के विरुद्ध मुकदमें के खर्च के लिए चन्दा इकट्ठा करने जैसे कार्य किए। इस आन्दोलन की प्रमुख विशेषता कानून के दायरे में इसका विस्तार किया जाना रही। पाबना विद्रोह के प्रमुख नेता ईशानचन्द्र राय, केशवचन्द्र राय, शम्भूपाल इत्यादि थे। साहूकारों और महाजनों के चंगुल से बचने के लिए 1874 ई. में सिरूर तालुका में विद्रोह प्रारंभ हुआ, जो देखते-देखते आस-पास के छ: तालुकों में फैल गया।

साहूकारों के साथ व्यक्तिगत हिंसा का प्रयोग केवल तब ही हुआ जब उन्होंने दस्तावेजों को बचाना चाहा। 12 मई, 1875 ई. को भीमरथी तालुका के सूपा कस्बे में यह आन्दोलन हिंसक हो गया, शेष स्थानों पर यह आन्दोलन अहिंसक रहा। सरकार द्वारा इस विद्रोह के कारणों और प्रकृति को जाँचने के लिए नियुक्त आयोग ने गरीबी और इसके परिणामस्वरूप किसानों की ऋणग्रस्तता को ही विद्रोह का एकमात्र कारण बताया। पाबना विद्रोह में अंग्रेज़ों के विरोध की कोई भावना नहीं थी। किसानों का नारा था हम सिर्फ और सिर्फ महारानी की रैयत होना चाहते हैं। इस आन्दोलन की एक विशेषता यह भी थी कि हिन्दू और मुसलमान एक साथ कन्धे-से-कन्धे मिलाकर संघर्ष किया, साम्प्रदायिक सौहार्द का यह एक अनूठा उदाहरण था। बंगाल के बुद्धिजीवी बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय तथा आर. सी. दत्त ने पाबना आन्दोलन का समर्थन किया। पाबना विद्रोह पर मुजफ्फर हुसैन ने जमींदार दर्पण नामक नाटक लिखा।

दक्कन विद्रोह (1874–1875 ई.)

महाराष्ट्र के दक्कन क्षेत्र में होने वाले कृषक विद्रोह का मुख्य कारण रैयतवाड़ी भू-राजस्व व्यवस्था थी। यहाँ के किसान करों के भारी बोझ के साथ-साथ साहूकारों के चंगुल में भी फँसे हुए थे। 1867 ई. में सरकार ने भू-राजस्व की दरों में 50% की वृद्धि कर दी, जिससे कृषक समस्याएँ चरम पर पहुँच गई, परिणामस्वरूप दक्कन में विद्रोह हुए। इस क्षेत्र के साहूकारों में अधिकांश बाहरी मारवाड़ी तथा गुजराती थे। लगान अदायगी के लिए कृषक इनसे प्राय: कर्ज़ लिया करते थे। कर्ज़ देने के बदले साहूकार कृषकों की सम्पत्ति को अपने कब्ज़े में लेकर, उन्हें अपने चंगुल में फँसा लेते थे। यह पूना, शोलापुर तथा सतारा तक फैल गया। ऋण सम्बन्धी कागज़ात तथा करारनामें लूटे गए तथा उनको जलाया गया। ब्रिटिश सरकार ने आन्दोलनकारियों के प्रति दमनकारी नीतियाँ अपनाईं। इन दंगों की प्रकृति तथा कारणों की जाँच के लिए सरकार ने आयोग (दक्कन उपद्रव आयोग) भी नियुक्त किया। आयोग का एकमत से निष्कर्ष था कि गरीबी के परिणामस्वरूप किसानों की ऋणग्रस्तता दक्कन विद्रोह का एकमात्र कारण था। अन्ततः दक्कन कृषक राहत अधिनियम, 1879 ई. पारित हुआ, जिसके फलस्वरूप कृषकों को महाजनों के विरुद्ध संरक्षण प्राप्त हुआ।

दिरांग आन्दोलन (1893–1894 ई.)

असम के कामरूप एवं दिरांग क्षेत्रों में 1893-94 ई. में एक नया राजस्व बन्दोबस्त लागू किया गया, जिसके तहत लगान की दरों में 50% से 70% तक की वृद्धि की गई। इसके विरोध में दिरांग आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। इस आन्दोलन का नेतृत्व ग्रामीणों द्वारा बनाई गई रैजमेला समिति ने किया। जिसके माध्यम से लगान अदायगी का बहिष्कार करने का निर्णय लिया गया।

अवध किसान आन्दोलन (1918 ई.)

अवध के क्षेत्र में सर्वप्रथम किसानों को ज़मींदारों और तालुकदारों के शोषण के विरुद्ध संगठित करने का प्रयास होमरूल लीग के कार्यकर्ताओं ने किया। गौरीशंकर मिश्र, इन्द्रनारायण द्विवेदी तथा मदन मोहन मालवीय के प्रयासों से फरवरी, 1918 में अवध में संयुक्त प्रान्त किसान सभा का गठन किया गया। संयुक्त प्रान्त किसान सभा ने शीघ्र ही शोषण के विरुद्ध आन्दोलन शुरू कर दिया। प्रतापगढ़ जिले में नाई-धोबी बन्द आन्दोलन चलाया गया। इस आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र प्रतापगढ़ जिले का रूर गाँव था। अवध किसान सभा को शक्तिशाली बनाने में बाबा रामचन्द्र की महत्वपूर्ण भूमिका थी। रामचन्द्र महाराष्ट्र के ब्राह्मण थे जिन्होंने सन्यासी के रूप में रामचरित मानस का पाठ कर किसानों में गौरव की भावना को जागृत किया।

एका आन्दोलन (1920–1922 ई.)

इस आन्दोलन का मुख्य कारण ज़मींदारों द्वारा की गई अत्यधिक लगान वृद्धि एवं गैर-कानूनी रूप से खेतों पर कब्जा करना था। इस आन्दोलन का क्षेत्र हरदोई, बाराबंकी, बहराइच एवं सीतापुर था। इस आन्दोलन का नेतृत्व पिछड़ी जातियों के मदारी पासी एवं सहदेव ने किया था। यह आन्दोलन किसानों के संगठित विद्रोह की पहली घटना थी। इस आन्दोलन का पुलिस ने बर्बरता से दमन किया। यह आन्दोलन अन्य किसान आन्दोलनों से इस मामले में भिन्न था कि इसमें काश्तकारों के साथ-साथ निम्न स्तर के ज़मींदार भी सम्मिलित थे। इस आन्दोलन को अवध किसान आन्दोलन की कड़ी के रूप में देखा जाता है।

बारदोली सत्याग्रह (1928 ई.)

सूरत के बारदोली तालुका में वर्ष 1928 में किसानों द्वारा लगान नहीं देने का आन्दोलन चलाया गया। आन्दोलन में कुनबी-पाटीदार जातियों के

तालिका 18.1: प्रमुख विद्रोह: किसान, धार्मिक, जातिगत

आंदोलन	वर्ष एवं प्रमुख क्षेत्र	नेतृत्वकर्ता	महत्वपूर्ण विशेषतायें
सन्यासी विद्रोह	1770-1800 ई. बंगाल, बिहार	मंजनूशाह, भवानी पाठक, मूसाशाह, देवी चौधरानी	तीर्थ स्थानों पर आने-जाने पर लगे प्रतिबंधों से झुब्ध सन्यासियों ने जनता के साथ मिलकर आक्रमण किया। एक लंबे अर्से के बाद वारेन हेस्टिंग्स ने इस विद्रोह को दबाया।
वहीबी विद्रोह	1820-1870 ई. पअना, हैदराबाद, मद्रास, बम्बई तथा उ.प्र.	सर सैयद अहमद, रायबरेलवी, अब्दुल वहाब	अंग्रजी प्रभुसत्ता को प्रबल तथा गम्भीर चुनौती वहाबी आन्दोलन ने दी।
भील विद्रोह	1824 ई., खानदेश	चिन्नावा, सेवाराम	—
कोल विद्रोह	1831-1832 ई. छोटा नागपुर	विनदराय मानकी	कोलो की जमीन को मुस्लिम कृषकों और सिक्खों को देने के लिए विद्रोह।
संथाल विद्रोह	1855-56 ई. बिहार, झारखण्ड	सिद्दू, कान्हू	संथाल जातियों के द्वारा पुलिस के दमन एवं जमींदारों-साहूकारों के द्वारा जबरन वसूली के विरूद्ध किया गया विद्रोह था।
कूका विद्रोह-1	1860-70 ई. पंजाब	भगत जवाहर मल, राम सिंह कूका	सिक्ख धर्म में प्रचलित बूराईयों ओर अन्धविश्वासों को दूर करना।
रम्पा विद्रोह	1922-24 ई. आन्ध्र प्रेदश	अल्लूरी सीताराम राजू	साहूकारों के शोषण एवं वन कानून के विरूद्ध आंदोलन।
अवध किसान सभी	1920 ई. प्रतापगढ़, उ.प्र.	बाबा राम चन्द्रा	यहां नाई, धोबी बंद नामक प्रसिद्ध आन्दोलन चलाया गया।
मोपला विद्रोह	1921 ई. केरल	आन्दोलन का समर्थन खिलाफत आन्दोलन के नात-शौकत अली, गांधी जी, मौलाना अबुल कलाम आजाद ने किया।	यह विद्रोह केरल के मालाबार क्षेत्र के काश्तकारों का जमींदारों के विरूद्ध विद्रोह था।
बाादोली सतयाग्रह	1928 ई.	बल्लभाई पटेल	बारदोली की महिलाओं ने पटेल को सरदार की उपाधि इसी सत्याग्रह के दौरान दी।

भू-स्वामी किसानों ने ही नहीं, बल्कि कालीपराज (काले लोग) जनजाति के लोगों ने भी हिस्सा लिया। कालीपराज निम्न जाति के लोग थे जिनकी स्थिति बदतर थी। उन्हें हाली पद्धति के अन्तर्गत उच्च जातियों के यहाँ पुश्तैनी मजदूर के रूप में कार्य कराना होता था। वर्ष 1927 में गाँधीजी ने कालीपराजाओ को नया नाम रानीपराज दिया। वर्ष 1927 में भीम भाई नाइक और शिवादासानी के नेतृत्व में कि सानों का एक प्रतिनिधि मण्डल बम्बई सरकार के राजस्व विभाग के प्रमुख से मिला। इसके बाद वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में वामलों गाँव में सभा हुई। वायसराय इरविन ने भी बम्बई के गवर्नर विल्सन को मामले को शीघ्र निपटाने का आदेश दिया था। कांग्रेस के नरमपंथी गुट ने सर्वेण्ट ऑफ इंडिया सोसायटी के माध्यम से सरकार द्वारा किसानों की माँगों की जाँच करवाने का अनुरोध किया।

सरकार ने ब्रूम फील्ड और मैक्सवेल को बारदोली मामले की जाँच का आदेश दिया। जाँच रिपोर्ट में बढ़ी हुई 30% लगान-दर को अवैध करार दिया गया। सरकार ने लगान को घटाकर 6.03% कर दिया। बारदोली सत्याग्रह के दौरान ही यहाँ की महिलाओं की ओर से गाँधीजी ने वल्लभाई पटेल को सरदार की उपाधि से विभूषित किया। वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में बारदोली का सफल किसान आन्दोलन सम्पन्न हुआ।

अखिल भारतीय किसान सभा (1936 ई.)

सविनय अवज्ञा आन्दोलन की समाप्ति के बाद 11 अप्रैल, 1936 को लखनऊ में अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना की गई। आन्ध्र प्रदेश किसान आन्दोलन के अग्रणी नेता एन.जी. रंगा को अखिल भारतीय किसान सभा का महासचिव नियुक्त किया गया। स्वामी सहजानन्द इसके अध्यक्ष बनाये गये। फैजपुर में कांग्रेस सम्मेलन के समय समानान्तर होने वाले अखिल भारतीय किसान आन्दोलन की अध्यक्षता भी एन.जी. रंगा ने की थी। इस सम्मेलन में भू-राजस्व की दर को 50% कम करने तथा किसान संगठनों को मान्यता देने की माँग उठाई गई। अखिल भारतीय किसान सभा को जवाहरलाल नेहरू ने भी सम्बोधित किया था। इस आन्दोलन को गति देने के लिए किसानों को प्रशिक्षण आवश्यक था। इसके लिए वर्ष 1938 में आन्ध्र प्रदेश में गुण्टूर जिले में 'निदुब्रोल' में पहला किसान स्कूल खोला गया।

वर्ली विद्रोह (1945 ई.)

महाराष्ट्र के वर्ली किसानों ने वर्ष 1947 में विद्रोह कर दिया। ये लोग बम्बई के समीप बसे आदिम जाति के किसान थे। ये लोग भी ज़मींदारों, साहूकारों तथा जंगलों के ठेकेदारों से पीड़ित थे। लगभग सभी वर्ली साहूकारों के बँधुआ मज़दूर थे। वर्ष 1946 में किसान सभा के नेतृत्व में आन्दोलन हुआ। फलस्वरूप इनकी माँगें मान ली गईं।

तेभागा आन्दोलन (1946 ई.)

20वीं सदी के पूर्वार्द्ध का यह किसान आन्दोलन बंगाल का सर्वाधिक सशक्त आन्दोलन था। इस आन्दोलन द्वारा किसानों ने जोतदारों को केवल एक तिहाई हिस्सा देने की घोषणा की। यह जोतदारों के विरुद्ध बटाईदारों का आन्दोलन था, जिसे कम्पाराम और भवन सिंह जैसे नेताओं ने नेतृत्व प्रदान किया। बंगाल भू-राजस्व अथवा फ्लाउड कमीशन से प्रेरित यह आन्दोलन स्वतंत्रता प्राप्ति तक चलता रहा। इस आन्दोलन का कार्यक्षेत्र त्रिपुरा के हसनवाबाद से लेकर बंगाल के नोआखाली तक विस्तृत था।

जनजातीय आन्दोलन (Tribal Revolts)

औपनिवेशिक काल में अंग्रेज़ों ने अपने साम्राज्य विस्तार के क्रम में कृषकों एवं आदिवासियों को उनकी ज़मीनों तथा क्षेत्रों से बेदखल किया, जिससे इन समुदायों में ब्रिटिश सरकार के प्रति तीव्र असन्तोष फैला, परिणामस्वरूप समय-समय पर देश के विभिन्न भागों में जनजातीय विद्रोह हुए।

सन्यासी विद्रोह

1770 ई. में बंगाल में इस आन्दोलन की शुरूआत हुई। इस आन्दोलन का प्रमुख कारण तीर्थ स्थानों पर जाने पर लगाया गया प्रतिबन्ध था। इस आन्दोलन के प्रमुख नेतृत्वकर्ता केनासरकार तथा दिर्जिनारायण थे। बंकिमचन्द्र ने आनन्दमठ नामक उपन्यास में इस विद्रोह का विस्तृत वर्णन किया है।

चुआर विद्रोह

चुआर विद्रोह दुर्जन सिंह तथा जगन्नाथ के नेतृत्व में बंगाल के मिदनापुर जिले में हुआ था, जिसका कारण बढ़ा हुआ भूमि कर एवं अकाल के कारण उत्पन्न आर्थिक संकट था। विद्रोह में आत्म विनाश की नीति अपनाते हुए कैलापल, दलभूम, बाराभूम एवं ढोल्का के राजाओं एवं चुआर आदिवासियों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह विद्रोह रूक-रूक कर (1816 ई.) लगभग 30 वर्षों तक चला।

हो एवं मुण्डा विद्रोह

अंग्रेज़ों द्वारा छोटानागपुर पठार के 'हो' एवं 'मुण्डा' आदिवासियों द्वारा उन्हें भूमि से बेदखल किए जाने के कारण विद्रोह किया गया। बंगाल के पाराहार के तत्कालीन राजा जगन्नाथ ने आदिवासियों की विद्रोह में सहायता की थी। मुण्डा विद्रोह 1874 ई. से प्रारंभ हुआ तथा 1895 ई. में बिरसा मुण्डा द्वारा नेतृत्व सम्भाले जाने पर यह प्रबल रूप में सामने आया, इन्होंने 1899 ई. में क्रिसमस की पूर्व संध्या पर विद्रोह की घोषणा की, जो वर्ष 1900 में पूरे मुण्डा क्षेत्र में फैल गया। मुण्डों की पारम्परिक भूमि व्यवस्था खूँटकट्टी में परिवर्तन के विरुद्ध मुण्डा विद्रोह की शुरूआत हुई, लेकिन कालान्तर में बिरसा ने इसे धार्मिक राजनीतिक आन्दोलन का रूप प्रदान किया। इस विद्रोह को उल्गुलन (महा विद्रोह) के नाम से जाना गया। बिरसा को प्रारम्भिक प्रसिद्धि, बीमारियों को ठीक करने की योग्यता के कारण प्राप्त हुई। बिरसा ने खुद को भगवान का दूत घोषित किया और कहा कि 'दिकुओं (गैर-आदिवासी) से हमारी लड़ाई होगी और उनके खून से जमीन इस तरह लाल होगी जैसे लाल झण्डा'। हजारों लोग जो इसके अनुयायी थे, से सिंगा बोंगा की पूजा करने को कहा तथा 1899 ई. में इसने दिकु (बाहरी महाजन, हाकिम, ठेकेदार) तथा ईसाइयों (अंग्रेज़ों) को भगाने का आह्वान किया। बिरसा मुण्डा ने घोषणा की, कि कलयुग को समाप्त कर सतयुग लाएँगे। इसके आह्वान पर इनके अनुयायियों ने अंग्रेज़ों पर हमला कर दिया। कालांतर में 3 फरवरी, 1900 को इन्हें सिंहभूमि में गिरफ्तार कर लिया गया तथा राँची जेल में इनकी हैजे से मृत्यु हो गई।

भील विद्रोह

इस विद्रोह का प्रारंभ 1818 ई. में पश्चिमी घाट क्षेत्र में हुआ था। भीलों की आदिम जाति पश्चिमी तट के खानदेश जिले में रहती थी। इस विद्रोह का प्रमुख कारण कृषि सम्बन्धी परेशानियाँ थीं, जोकि अंग्रेज़ों द्वारा पैदा की गई थीं। 1825 ई. में सेवाराम के नेतृत्व में भीलों ने पुन: विद्रोह किया। किन्तु वे असफल रहे। ब्रिटिश सेना द्वारा कुचल दिया गया।

अहोम विद्रोह

जब ब्रिटिश साम्राज्य ने असम के अहोम क्षेत्र को अंग्रेज़ी राज में मिलाने का प्रयास किया, तब 1828 ई. में गोमधर कुँवर के नेतृत्व में अहोम लोगों ने ब्रिटिश राज के विरुद्ध विद्रोह किया। विद्रोह को तत्कालीन समय में सैनिक कार्यवाही द्वारा दबा दिया गया, परन्तु 1830 ई. में पुन: विद्रोह की स्थिति को देखते हुए अंग्रेज़ों ने असम के महाराजा पुरन्दर सिंह को उत्तरी असम प्रदेश देकर विद्रोह का शान्तिपूर्वक समाधान किया।

कोल विद्रोह

कोल विद्रोह 1831 ई. में छोटानागपुर क्षेत्र में हुआ था। यह विद्रोह वर्तमान झारखण्ड राज्य रांची, सिंहभूम, हजारीबाग, पलामू तथा मानभूम जिले के पश्चिमी क्षेत्र में फैला था। इस विद्रोह का प्रमुख कारण कोल आदिवासियों की जमीन छीनकर मुस्लिम एवं सिख कृषकों को देना था। इस विद्रोह में सुर्गा एवं सिंगराय ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। यह विद्रोह में सुर्गा एवं सिंगराय ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

खासी विद्रोह

भारत में अपना साम्राज्य विस्तार करने के लिए जब अंग्रेज़ों ने उत्तरी-पूर्वी खासी पहाड़ियों से सिलहट के बीच सड़क मार्ग बनाना शुरू किया, तो स्थानीय लोगों ने इसे ब्रिटिश राज का उनकी स्वतंत्रता पर हस्तक्षेप मानते

हुए विद्रोह कर दिया। स्थानीय खाम्पटी एवं सिंहपों लोगों ने राजा तीरत सिंह के नेतृत्व में विद्रोह किया। इस विद्रोह में बारमानिक एवं मुकुन्द सिंह ने भी विशेष योगदान दिया था। 1833 ई. तक बर्बर सैनिक कार्यवाही द्वारा विद्रोह को दबा दिया गया।

संथाल विद्रोह

यह विद्रोह आदिवासी विद्रोहों में सर्वाधिक सशक्त विद्रोह था। यह भागलपुर एवं राजमहल के संथाल आदिवासियों ने 1855 ई. में सिद्धू एवं कान्हू के नेतृत्व में ज़मींदारों, साहूकारों के अत्याचार एवं अधिकारियों के विरुद्ध विद्रोह किया। अपनी सशक्त प्रकृति के कारण विद्रोह वीरभूमि, बांकुरा, सिंहभूम, मुंगेर, हजारीबाग एवं भागलपुर जिलों में फैल गया। 1856 ई. में ब्रिटिश सरकार ने सैन्य कार्यवाही द्वारा विद्रोह को दबा तो दिया, किन्तु क्षेत्र में शान्ति स्थापित करने के लिए सरकार को विद्रोहियों की अलग संथाल परगना गठित करने की माँग स्वीकार करनी पड़ी।

नागा विद्रोह

यह विद्रोह नागालैण्ड में रानी गिडाल्यु के नेतृत्व में हुआ था। उन्होंने जदोनांग के विचारों से प्रेरित होकर होर्का पन्थ की स्थापना की थी, इन्हें जवाहरलाल नेहरू ने 'रानी' की उपाधि दी थी। यह विद्रोह 1932 से आज़ादी मिलने तक चला था।

रम्पा विद्रोह

यह विद्रोह आन्ध्र प्रदेश के गोदावरी जिले के उत्तर में स्थित रम्पा क्षेत्र में 1879 ई. को हुआ था। आदिवासियों का यह विद्रोह साहूकारों के शोषण तथा वन कानूनों के विरुद्ध हुआ। वर्ष 1922-24 ई. के मध्य हुए रम्पा विद्रोह के नेता अल्लूरी सीताराम राजू थे, जो गैर-आदिवासी नेता थे, जिन्हें गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन से प्रेरणा प्राप्त हुई। इसे वर्ष 1924 में अंग्रेज़ों द्वारा कुचल दिया गया।

तानाभगत आन्दोलन

इस आन्दोलन की शुरूआत छोटानागपुर क्षेत्र में वर्ष 1914 में हुई। इस आन्दोलन का नेतृत्व तना भगत नामक आदिवासी ने किया। इसके नेतृत्व में शराब की दुकानों पर धरना देकर सत्याग्रह और प्रदर्शनों में भाग लेकर भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी की। जतरा भगत ने आन्दोलन लगान की दरों में ऊँची वृद्धि तथा चौकीदारी कर के विरुद्ध भी आन्दोलन किया।

अन्य क्षेत्रीय आन्दोलन
(Other Regional Movements)

फकीर विद्रोह

यह विद्रोह 1776 ई. में बंगाल में हुआ था। इसका नेतृत्व मजनूशाह एवं चिराग अली शाह ने किया था। इस विद्रोह में देवी चौधरानी एवं भवानी पाठक ने विशेष योगदान दिया था। कालान्तर में यह विद्रोह 1817 ई. से 1825 ई. के मध्य उड़ीसा में जनजाति द्वारा किया गया था। इस विद्रोह का नेतृत्व बख्शी जगबन्धु ने किया था।

पॉलीगारों का विद्रोह

ब्रिटिश सरकार ने दक्षिण भारत के तमिलनाडु क्षेत्र में नई भूमिकर व्यवस्था को लागू किया था, जिसके विरोध में 1801 ई. में स्थानीय पॉलीगारों ने वी.पी. काट्टवाम्मान के नेतृत्व में विद्रोह किया था। यह विद्रोह 1856 ई. तक चलता रहा। अन्ततः अंग्रेज़ों द्वारा इस आन्दोलन को कुचल दिया गया।

कच्छ विद्रोह

कच्छ के राजा भारमल्ल को अंग्रेज़ों ने सत्ता से बेदखल कर दिया था। अंग्रेज़ों ने भारमल्ल को सत्ता से बेदखल करके उसके अल्पवयस्क पुत्र को राजा बना दिया था, जिसके विरोध में भारमल्ल एवं उसके समर्थकों ने (1819 ई. में) विद्रोह कर दिया। राव भारमल्ल की हार के बाद कच्छ से सहायक सन्धि लागू की गई।

किट्टूर विद्रोह

इस विद्रोह (1824-29 ई.) का नेतृत्व किट्टूर के स्थानीय शासक की विधवा रानी चेन्नमा ने किया था। इस विद्रोह का प्रमुख कारण निःसन्तान राजा के दत्तक पुत्र को अंग्रेज़ों द्वारा मान्यता नहीं देना था। ब्रिटिश सरकार ने दमन का सहारा लेकर इस विद्रोह को कुचल दिया।

पागलपन्थी विद्रोह

बंगाल के करमशाह ने एक अर्द्ध-धार्मिक सम्प्रदाय पागलपन्थी की स्थापना की थी। ज़मींदारों एवं साहूकारों के अत्याचारों के खिलाफ करमशाह के पुत्र टीपू ने स्थानीय गारो लोगों के साथ मिलकर 1825 ई. में विद्रोह किया। 1850 ई. तक आते-आते विद्रोह सशक्त संगठन के अभाव में स्वतः समाप्त हो गया।

वहाबी आन्दोलन

यह आन्दोलन 1830 ई. से 1860 ई. के बीच रायबरेली के सैय्यद अहमद के नेतृत्व में हुआ था, जो दिल्ली के शाहवली उल्लाह (1702-62) से प्रभावित था। इस विद्रोह का मुख्य उद्देश्य इस्लाम धर्म में आई बुराइयों को दूर करके हजरत मुहम्मद से सम्बन्धित मूल इस्लाम धर्म को पुनर्स्थापित करना था। भारत में इसका मुख्य केन्द्र पटना था। 1857 ई. के विद्रोह में वहाबी लोगों ने जनता को अंग्रेज़ों के विरुद्ध भड़काया था। वहाबी लोगों ने कुछ समय तक पेशावर (1830 ई.) पर सय्यद अहमद के नेतृत्व में अधिकार किया था, किन्तु सैय्यद अहमद युद्ध में मारे गए। 1860 ई. के बाद ब्रिटिश सरकार ने सैनिक कार्यवाही के द्वारा इस विद्रोह को दबा दिया था। इस विद्रोह के प्रमुख नेता बिलायत अली और इनायत अली थे।

खोण्ड एवं सवार विद्रोह

यह विद्रोह 1837 ई. से लेकर 1856 ई. के बीच तमिलनाडु, बंगाल एवं मध्य भारत में रहने वाली खोण्ड एवं सवार जनजातियों द्वारा किया गया था।

इस विद्रोह के प्रमुख कारणों में सरकार द्वारा नरबलि पर रोक लगाना तथा नए कर लगाना था। विद्रोह का नेतृत्व चक्र विसोई ने किया था तथा राधा कृष्णन दण्डसेन आदि ने भी विद्रोह में विशेष भूमिका निभाई थी। 1857 ई. में शुरू हुए सवार विद्रोह में राधा कृष्णन दण्डसेन को पकड़कर फाँसी पर चढ़ा दिया गया, जिससे विद्रोह स्वत: समाप्त हो गया।

फराजी विद्रोह

यह विद्रोह बंगाल के फरीदपुर नामक स्थान से शुरू हुआ था। फराजी सम्प्रदाय के प्रवर्तक शरीयतुल्ला थे। शरीयतुल्ला के पुत्र दादू मियाँ ने अंग्रेज़ों को बंगाल से बाहर निकालने के लिए तथा ज़मींदारों के अत्याचार को समाप्त करने के लिए 1838 ई. में विद्रोह किया। इस आन्दोलन का स्वरूप धार्मिक था। यह विद्रोह 1857 ई. तक चला, परन्तु सक्रिय नेतृत्व के अभाव में यह समाप्त हो गया तथा फराजी सम्प्रदाय के लोग वहाबी आन्दोलन से जुड़ गए।

कूका विद्रोह

भगत जवाहरमल ने पश्चिमी पंजाब में 1840 ई. में कूका विद्रोह की शुरूआत की थी। इस आन्दोलन की आरंभिक प्रवृत्ति धार्मिक थी, परन्तु शीघ्र ही इसने राजनीतिक रूप ले लिया। कूका विद्रोह का प्रमुख उद्देश्य सिख धर्म की बुराइयों को दूर करना था। हजारा को विद्रोह का केन्द्र स्थल बनाते हुए जवाहरमल ने बालक सिंह एवं रामसिंह के सहयोग से विद्रोह किया था। अंग्रेज़ों ने दमन का सहारा लेकर विद्रोह को दबा दिया तथा रामसिंह को रंगून निर्वासित कर दिया गया।

गड़करी विद्रोह

यह विद्रोह महाराष्ट्र के कोल्हापुर में 1844 ई. में हुआ था। इस विद्रोह का मुख्य कारण गड़करी जाति के विस्थापित सैनिक थे। इन विस्थापित सैनिकों ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह करते हुए भूदरगढ़ एवं समनगढ़ के किलों पर आक्रमण किया था। अंग्रेज़ों द्वारा इस आन्दोलन का दमन कर दिया गया।

फड़के विद्रोह

1879 ई. में महाराष्ट्र में हुए इस विद्रोह का नेतृत्व वासुदेव बलवन्त फड़के ने प्रारम्भ किया था। इसका उद्देश्य डाका डालकर अंग्रेज़ों से धन लूटना तथा संचार व्यवस्था को ठप करना था। फड़के ने हिन्दू राज्य की स्थापना का नारा दिया। 1880 ई. में फड़के को गिरफ्तार कर लिया गया।

खारवाड़ विद्रोह

यह विद्रोह 1870 में हुआ था। यह विद्रोह भू-राजस्व बंदोबस्त व्यवस्था के विरुद्ध था। अंग्रेज़ों ने दमन के सहारे इसे दबा दिया।

कोया विद्रोह

कोया आदिवासियों ने जंगलों से अपने पारंपरिक अधिकारों, पुलिस ज्यादतियों, साहूकारों के शोषण और ताड़ी के उत्पादन पर लगाये गये कर के विरोध में विद्रोह किया। इस विद्रोह का केन्द्र बिन्दु चोंडवरम का रम्पा प्रदेश था।

अध्याय सार संग्रह

- बंगाल के पाबना में 1870-80 के दशक में ज़मींदारों के उत्पीड़न के विरोध में किसानों ने आन्दोलन किया।
- पश्चिमी भारत के दक्कन क्षेत्र में होने वाले कृषक विद्रोहों का मुख्य कारण रैयतबाड़ी बंदोबस्त के अंतर्गत किसानों पर आरोपित किए गए कर थे।
- अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना 1936 में लखनऊ में की गई।
- उत्तर प्रदेश के हरदोई, बहराइच और सीतापुर जिले 'एका आन्दोलन' से प्रभावित थे।
- रामोसी आन्दोलन का नेतृत्व वसुदेव बलवंत फाड़के ने किया था।
- पागलपंथी विद्रोह ज़मींदारों एवं साहूकारों के अत्याचारों के खिलाफ था।
- वर्ष 1859-60 में बंगाल में नील विद्रोह हुआ था।
- एन.जी.रंगा ने 1933 ई. में भारतीय कृषक संस्थान की स्थापना की।
- बारदौली के किसानों की मुख्य समस्या हाली प्रणाली थी।
- 1879 में दक्कन कृषक राहत अधिनियम बनाया गया।
- संथाल विद्रोह का नेतृत्व सिद्धू और कान्हू ने किया था।
- आन्ध्र प्रदेश के चम्पा क्षेत्र के आदिवासियों ने ज्यादतियों के खिलाफ 1840 से 1924 तक कई विद्रोह किए।
- बिरसा मुण्डा के नेतृत्व में 1899-1900 के बीच मुण्डा आदिवासियों ने सशक्त विद्रोह किया।
- कोल विद्रोह का प्रमुख नेता बुद्धो भगत था।
- रानी चेन्नमा ने किट्टूर विद्रोह को नेतृत्व प्रदान किया था।
- अवध किसान आंदोलनकारियों ने किसानों से बेदखली, भूमि न जोतने तथा बेगार न करने की अपील की।
- तेभागा आंदोनन जोतदारों के विरूद्ध बटाईदारों का आन्दोंलन था जिसमें उपज का एक तिहाई भाग प्रदान करने की मांग की गई।
- फड़के ने 'हिन्दु राज्य' की स्थापना का नारा दिया, इसके आन्दोलन से स्पष्ट क्रांतिकारी आतंकवाद का पूर्णमास मिलता है।

19 अध्याय

1857 ई. का विद्रोह

इस अध्याय में आप सीखेंगे कि:

- 1857 ई. की क्रांति के विभिन्न कारण क्या थे। विद्रोह का प्रारम्भ कब, कैसे और कहाँ हुआ। और किस प्रकार इस विद्रोह ने एक राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर लिया।
- विद्रोह के असफलता के कारण क्या थे और विद्रोह के बाद उसके परिणाम क्या हुए और कौन-कौन से प्रशासनिक परिवर्तन किये गए।
- विद्रोह में विभिन्न वर्गों की भूमिका और विद्रोह का स्वरूप क्या था।

परिचय (Introduction)

1857 ई. का विद्रोह सैनिकों के असन्तोष का परिणाम मात्र नहीं था। वास्तव में, यह औपनिवेशिक शासन के चरित्र, उसकी नीतियों तथा उसके कारण कम्पनी के शासन के प्रति जनता में संचित असन्तोष का परिणाम था। इस विद्रोह के कारण निम्नलिखित हैं—

राजनीतिक कारण

1803 ई. से ही मुगल सम्राट ब्रिटिश संरक्षण में रहने लगा था, परंतु मान-मर्यादा सम्बन्धित उसके दावे स्वीकृत थे। इसके अतिरिक्त कैनिंग ने 18 56 ई. में घोषणा की, कि बहादुरशाह के उत्तराधिकारी सम्राट नहीं बल्कि शहज़ादों के रूप में जाने जाएँगे। मुगल बादशाह चूँकि भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करता था, इसलिए उसके अपमान में जनता ने अपना अपमान महसूस किया और विद्रोह के लिए मजबूर हुए। डलहौज़ी ने अपनी व्यपगत नीति द्वारा जैतपुर, सम्भलपुर, झाँसी, नागपुर आदि राज्यों का ब्रिटिश साम्राज्य में विलय कर लिया, साथ ही अवध के नवाब को गद्दी से उतार दिया, भूतपूर्व पेशवा की पेन्शन जब्त कर ली। ये सभी कारण व्यापक असन्तोष फैलाने के लिए पर्याप्त थे। डलहौज़ी ने तन्जौर और कर्नाटक के नवाबों की राजकीय उपाधियाँ जब्त कर ली। मुगल बादशाह को लाल किला छोड़कर कुतुबमीनार के पास रहने का आदेश आदि ने आंदोलन को संभाव्य बना दिया।

आर्थिक कारण

भारत में कम्पनी की सभी नीतियों के मूल में भारत का आर्थिक शोषण कर अपना मुनाफा बढ़ाना था। प्लासी के युद्ध के बाद निरंतर भारत का शोषण होता रहा जो शायद जन असंतोष का सबसे महत्वपूर्ण कारण था। स्थायी बन्दोबस्त, रैयतवाड़ी व्यवस्था और महालवाड़ी व्यवस्था द्वारा किसानों का जबरदस्त शोषण हुआ और वे निर्धनता के कुचक्र में फँस गए। आर्थिक शोषण और उसके पारम्परिक आर्थिक ढाँचे के पूर्णतया विनाश ने किसानों, दस्तकारों, हस्तशिल्पकारों तथा बड़ी संख्या में परम्परागत ज़मींदारों को दरिद्र बना दिया। अंतत: आर्थिक असंतोष ने विद्रोह का रूप ले लिया।

सामाजिक-धार्मिक कारण

कम्पनी की विभिन्न नीतियों से भारतीयों में इस भावना को बल मिला कि उनकी सभ्यता एवं संस्कृति खतरे में है। ईसाई मिशनरियों के धर्म-प्रचार से इस भावना को और बल मिला। सामाजिक-धार्मिक कुरीतियां(जैसे-सती प्रथा, कन्या वध, बाल विवाह का निषेध एवं विधवा विवाह के सम्बन्ध में बनाए गए कानूनों को भी लोगों ने अपनी व्यवस्था पर आघात माना। 1856 ई. के धार्मिक निर्योग्यता अधिनियम द्वारा ईसाई धर्म ग्रहण करने वाले लोगों को अपनी पैतृक सम्पत्ति का हकदार माना गया, साथ ही उन्हें नौकरियों में पदोन्नति, शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश की सुविधा प्रदान की गई। अंग्रेज़ों की इन नीतियों ने भारतीयों को अन्तत: विद्रोह के लिए मानसिक रूप से तैयार कर दिया।